कोई खास नतीजा निकलता

स्वाभाविक ही आफ्सपा झेल रहे तमाम इलाकों में इसे काले कानून के रूप में देखा जाता है। इसके तहत सुरक्षा बलों के जवान और अधिकारी संदेह के आधार पर किसी को गोली मार सकते हैं, बिना किसी वॉरंट के घर की तलाशी ले सकते हैं और कानूनी कार्रवाई से भी बचे रह सकते हैं।

नवीन पंडित।।

नगालैंड में सुरक्षा बलों की कार्रवाई और उसके बाद भड़की हिंसा से उपजे सवाल 14 नागरिकों की मौत तक सीमित नहीं हैं। सभी मानते हैं कि इस मामले में सुरक्षा बलों से चूक हुई है। खुद गृहमंत्री ने घटना पर अफसोस जताया है और जांच की भी घोषणा की है। लेकिन ऐसी घटनाओं पर सरकार क्या स्पष्टीकरण देती है, इससे बड़ा सवाल यह बनता है कि सरकारी स्पष्टीकरण को उस क्षेत्र के लोग किस तरह देखते हैं। खासकर नॉर्थ–ईस्ट के संदर्भ में देखा जाए तो ऐसे तमाम मामलों में जांच की घोषणाएं होती रही हैं, लेकिन उनका कोई खास नतीजा निकलता नहीं देखा गया।

इसकी जड़ में है आफ्सपा यानी आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर्स एक्ट, जो सुरक्षा बलों को असाधारण अधिकार देता है। इस बार भी सरकार की तरफ से यह प्रतिबद्धता दर्शाई गई है कि जांच में जो भी दोषी पाए जाएंगे, उनके खिलाफ कानून के मुताबिक उपयुक्त कार्रवाई की जाएगी। पर क्या आफ्सपा के रहते दोषियों के खिलाफ काननन किसी तरह की कार्रवाई संभव हो पाएगी? आज भी यह कानून नगालैंड, असम, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश के कुछ इलाकों और जम्मू–कश्मीर में लागू है। इसके तहत सुरक्षा बलों के जवान और अधिकारी संदेह के आधार पर किसी को गोली मार सकते हैं, बिना किसी वॉरंट के घर की तलाशी ले सकते हैं और कानूनी कार्रवाई से भी बचे रह सकते हैं।

पिछले बीस वर्षों के दौरान जम्मू–कश्मीर सरकार की ओर से आर्मी के खिलाफ कार्रवाई की जितनी भी सिफारिशें आईं, केंद्र ने आफ्सपा के तहत उन सभी मामलों में मुकदमा चलाने की इजाजत देने से इनकार कर दिया। स्वाभाविक ही आफ्सपा झेल रहे तमाम इलाकों में इसे काले कानून के रूप में देखा जाता है। इस बार भी घटना के बाद से आफ्सपा हटाने की मांग तेज हो गई है। बीजेपी के सहयोगी दलों से जुड़े दो मुख्यमंत्री– नगालैंड के नेफ्यू रियो और मेघालय के कॉनराड के संगमा भी ऐसी मांग करने वालों में शामिल हो चुके हैं। हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आतंकवाद या उग्रवाद से निपटना काफी मुश्किल काम है और सुरक्षा बलों को भी अपनी जान जोखिम में डाले रहते हुए ड्यूटी करनी पड़ती है। इसके बावजूद सुरक्षा बलों या आम लोगों के बीच इस तरह का अहसास जमने देना ठीक नहीं है कि सुरक्षा बलों के जवान कुछ भी करें उनके खिलाफ किसी तरह की कानूनी कार्रवाई नहीं होगी। कई चर्चित मामलों में भी सुरक्षा बलों के खिलाफ किसी तरह की कार्रवाई न होने से ऐसा भाव बनने लगा है और यह भी एक वजह है कि कई विशेषज्ञ भी आफ्सपा हटाने की जरूरत बताते रहे हैं। खासकर चीन के साथ सीमा विवाद से गरमाए माहौल और म्यांमार में सैन्य सत्ता की वापसी के चलते सीमावर्ती राज्यों में बने हालात को ध्यान में रखें तो आफ्सपा पर पुनर्विचार की यह जरूरत और बढ़ जाती है।

विश्वास प्रणाली

धर्म-दर्शन

अशोक वोहरा।

इस समीक्षा से यह इस प्रकार है कि धर्म एक जटिल समाजशास्त्रीय निर्माण है जो व्यापक प्रकार के समूह और व्यक्तिगत गतिविधियों, घटनाओं, दृष्टिकोणों, व्यवहारों और अनुभवों को शामिल करता है, ताकि धर्म का एक उपयुक्त तंत्रिका विज्ञान समान रूप से विविध हो। साझा धार्मिक ज्ञान बनाम व्यक्तिगत धार्मिक ज्ञान कोई भी विश्वास प्रणाली अर्थ ज्ञान के शरीर पर आधारित है और धार्मिक विश्वास के मामले में, शब्दार्थ ज्ञान का शरीर सिद्धांत है, या अलौकिक एजेंटों और संस्थाओं के बारे में अवधारणाओं का सेट है जो विश्वासियों को वास्तविक रूप में स्वीकार करते हैं. इस सिद्धांत में एक अमूर्त भाषाई सामग्री है, जो सांस्कृतिक रूप से प्रसारित होने के अलावा विभिन्न संस्थागत धर्मों के लिए विशिष्ट है।.

संपादकीय

कार्यकर्ता की मजबूरी

दलबदल करने वाले एक विधायक से जब यह सवाल हुआ कि उसने दलबदल क्यों किया, तो उसका जवाब यह था कि हमने कोई एफिडेविट तो दिया नहीं था कि ताउम्र इसी राजनीतिक दल के साथ राजनीति करेंगे। हमें जहां अच्छा लगेगा हम उस पार्टी में जाएंगे। पार्टियां जिन्हें वैचारिक स्तर पर तैयार करती हैं, उनमें से ज्यादातर आजीवन कार्यकर्ता बनकर ही रह जाते हैं। लेख के शुरू में सोशल मीडिया पर तैरती जिस पीड़ा का जिक्र किया गया, दरअसल वह पीड़ा इसी श्रेणी के कार्यकर्ताओं की है। वे इस उम्मीद में पार्टी के लिए जी–जान से जुटे रहते हैं कि एक न एक दिन उनका भी नंबर आएगा, लेकिन नहीं आता। नंबर की जगह उनके हिस्से आती है सांत्वना।

राजनीतिक दलों की अपनी मजबूरी भी एक वजह है। एक पार्टी के एक बुजुर्ग नेता से बातचीत हो रही थी। बताने लगे, 'एक दौर वह भी हुआ करता था, जब पार्टियां चुनाव लड़ने के लिए अपने उम्मीदवारों को आर्थिक सहयोग किया करती थीं। लेकिन अब चुनाव इतना महंगा हो गया है कि उसका खर्च उठाना पार्टियों के लिए मुमकिन ही नहीं रह गया है। थोड़ी बहुत मदद तो हो जाती है लेकिन चुनावी खर्च का बड़ा हिस्सा उम्मीदवारों को ही जुगाड़ करना पड़ता है। वे करते भी हैं क्योंकि ऐसा नहीं करेंगे तो हार जाएंगे। ज्यादातर कार्यकर्ताओं के पास चुनाव लड़ने लायक पैसा नहीं होता, उन्हें अगर टिकट दे भी दिया जाए तो वे हार जाएंगे। इसलिए पार्टियों की मजबूरी होती है कि वे ऐसे उम्मीदवारों का चयन करें जो आर्थिक रूप से सक्षम हों।' फिर से पुराना वक्त कब लौटेगा, यह कहना मुश्किल है लेकिन बदलाव की कोशिश जरूर होती रहनी चाहिए।

वैसे इस तरह की पीड़ा को न तो किसी दल विशेष के कार्यकर्ताओं तक सीमित किया जा सकता है और न इलाका विशेष तक। राजनीतिक दलों के अंदर कल्चर में जो बदलाव आया है, उसमें राजनीतिक कार्यकर्ताओं की यह पीड़ा आम हो गई है।

पहले उम्मीदवारी, बाद में सदस्यता

नदीम।।

दरअसल यह विषय इसलिए लिया कि कुछ दिनों पहले एक दल विशेष के कार्यकर्ताओं की पीड़ा सोशल मीडिया पर तैर रही थी। शीर्ष नेतृत्व से मनुहार थी, 'श्रीमन, जिनके लिए आपने दल के दरवाजे खोले हैं, ये वही हैं, जिनसे हम लोग क्षेत्र में बरसों– बरस से लड़ते आ रहे हैं। हम लोगों का निजी तौर पर इनसे कोई बैर नहीं था लेकिन पार्टी के लिए ही हम लोग इनसे मुकाबला करते रहे और यह मुकाबला कब निजी दुश्मनी में बदल गया, पता ही नहीं चला। इस दुश्मनी की बड़ी कीमत भी हम लोगों को चुकानी पड़ी है लेकिन हम लोगों ने सहर्ष चुकाई। अब जब वे हमारे ही दल के निशान पर चुनाव लड़ रहे होंगे और उन्हें जिताने की महती जिम्मेदारी आपके द्वारा हम कार्यकर्ताओं के कंधे पर डाल दी गई है तो समझ नहीं आ रहा कि हम लोग कैसे उन्हें अपने कंधे पर बिठाकर जिंदाबाद के नारे लगाएंगे?' वैसे इस तरह की पीड़ा को न तो किसी दल विशेष के कार्यकर्ताओं तक सीमित किया जा सकता है और न इलाका विशेष तक। हाल के वर्षों के दौरान राजनीतिक दलों के अंदर कल्चर में जो बदलाव आया है, उसमें राजनीतिक कार्यकर्ताओं की यह पीड़ा आम हो गई है।

एक वक्त हुआ करता था जब पार्टियों में चुनावी

टिकट का बंटवारा काडर आधारित हुआ करता था। लेकिन अब तो इस बात के कोई मायने नहीं रहे कि पार्टी जिन्हें टिकट दे रही है, वे दल के साथ कितने दिनों से हैं और दल के प्रति उनकी निष्ठा कितनी है। पिछले सितंबर महीने में 'असोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स' (एडीआर) की एक रिपोर्ट आई, जिसमें कहा गया है, '2014 से 2021 के बीच हुए अलग–अलग चुनावों में 1133 उम्मीदवारों ने दल–बदल किया। इसके अलावा 500 सांसदों– विधायकों ने भी पाला बदला।' ऐसा इसलिए मुमकिन हुआ क्योंकि दलबदल करने वालों को यह यकीन रहा कि उनको नए दल से टिकट पाने में कोई दिक्कत नहीं होगी।

कई मौकों पर ऐसी खबरें अखबार में सुर्खियां बनीं जब किसी पार्टी से किसी के टिकट का एलान पहले हो गया और उसने दल की सदस्यता बाद में ली। अब जब पांच राज्यों के चुनाव हो रहे हैं, दलबदल का मौसम फिर से आ गया है। कोई दिन ऐसा नहीं गुजरता जब किसी न किसी राज्य से दलबदल की खबर न आती हो। राजनीतिक दल उसे साझा करते हुए बड़े गर्व का अनुभव करते हैं। वजह यह है कि राजनीतिक दलों के लिए 'टिकाऊ' नहीं बल्कि 'जिताऊ' का फॉर्म्युला ज्यादा अहम हो गया है। उन्हें किसी भी कीमत पर जीत चाहिए होती है।

पिछले साल एक राज्य के चुनाव के मौके पर एक उम्मीदवार का ऑडियो वायरल हुआ था, जिसमें उन्हें अपने समर्थकों के बीच एक दल के लिए यह कहते हुए सुना गया था, 'हमें उनकी उतनी गर्ज नहीं है, जितनी उन्हें हमारी गर्ज है। टिकट तो वह हमारे घर आकर देंगे।' फिर ऐसा हुआ भी था। दरअसल अब एक ऐसा ट्रेंड देखने को मिल रहा है कि जिस भी राज्य में चुनाव होने को होते हैं, राजनीतिक दल ऐसे चेहरों की तलाश शुरू कर देते हैं, जो उनके लिए सीट जिताने का माद्दा रखते हैं और यहीं से दलबदल का दरवाजा खुलता है। इन दिनों जिस तरह की राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हुआ है, उसकी वजह यही 'दलबदल' है, क्योंकि पार्टी के प्रति उनकी कोई निष्ठा होती ही नहीं। वे एक–दूसरे की मजबूरी के तहत साथ आते हैं और जैसे ही उन्हें कोई और बेहतर रास्ता दिखता है, वे फिर से पाला बदल लेते हैं।

सूडोकु नवताल-5381

सरल

4	6		3		8	9		7
	1		9		6		5	4
						8		
	4		5				8	
2		5		4		6		1
	3				1		7	
		3						
5	9		7		2		6	
7		6	4		3		9	2

- प्रत्येक पंक्ति में 1 से 9 तक के अंक भरे जाने आवश्यक हैं.
- प्रत्येक आड़ी और खड़ी पंक्ति में एवं 3×3 के वर्ग में किसी भी अंक की पुनरावृत्ति न हो इसका विशेष ध्यान रखें.
- पहले से मौजूद अंकों को आप हटा नहीं सकते.
- पहेली का केवल एक ही हल है.

सूडोकु नवताल -5380 का हल

5	7	2	3	8	4	1	9	6
8	6	1	9	2	5	7	3	4
3	9	4	1	6	7	5	8	2
2	5	7	4	1	3	8	6	9
4	8	6	6	9	2	3	7	1
1	3	9	6	7	8	4	2	5
6	2	3	7	4	1	9	5	8
9	4	5	8	3	6	2	1	7
7	1	8	2	5	9	6	4	3

अपना ब्लॉग

30 करोड़ से अधिक बच्चे वायु प्रदूषण से प्रभावित

मोहन। दुनियाभर में 30 करोड़ से अधिक बच्चे वायु प्रदूषण से प्रभावित हैं। 2017 में बढ़ते प्रदूषण की वजह से 12 लाख लोगों की मौत हुई थी। आज की स्थिति और भी भयावह है। प्रदूषण को हमने कभी गम्भीरता से नहीं लिया। सरकारों और संबंधित एजेंसियों का दावा है कि किसानों द्वारा पराली जलाए जाने से स्थिति गंभीर हुई है। पराली हजारों सालों से जल रही है, फिर इतना कोहराम क्यों नहीं मचा। लेकिन आज किसान और पराली पर राजनीति हो रही है। प्रदूषण को हमने कभी गम्भीरता से नहीं लिया। कभी चीन और थाईलैण्ड की स्थिति बेहद बुरी थी। लेकिन वहां की सरकारों ने प्रदूषण रोकने और उद्योग से निकले वाले कार्बन उत्सर्जन को रोकने के लिए गम्भीरता दिखाई। आधुनिक मशीनें लगाकर शुद्ध हवा का विकल्प खोजा। लेकिन भारत इस तरह का कदम उठाने में नाकाम रहा है। देश के एक पूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री कहते थे कि प्रदूषण से बचना है तो गाजर खाएं। यह हास्यास्पद है। प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सख्त फैसले लेने होंगे।